मूल्य : 25 रुपये

वर्ष : 2, अंक : 6, अप्रैल–जून, 2010

पारस–परखान

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी

पारस–बेला न्यास

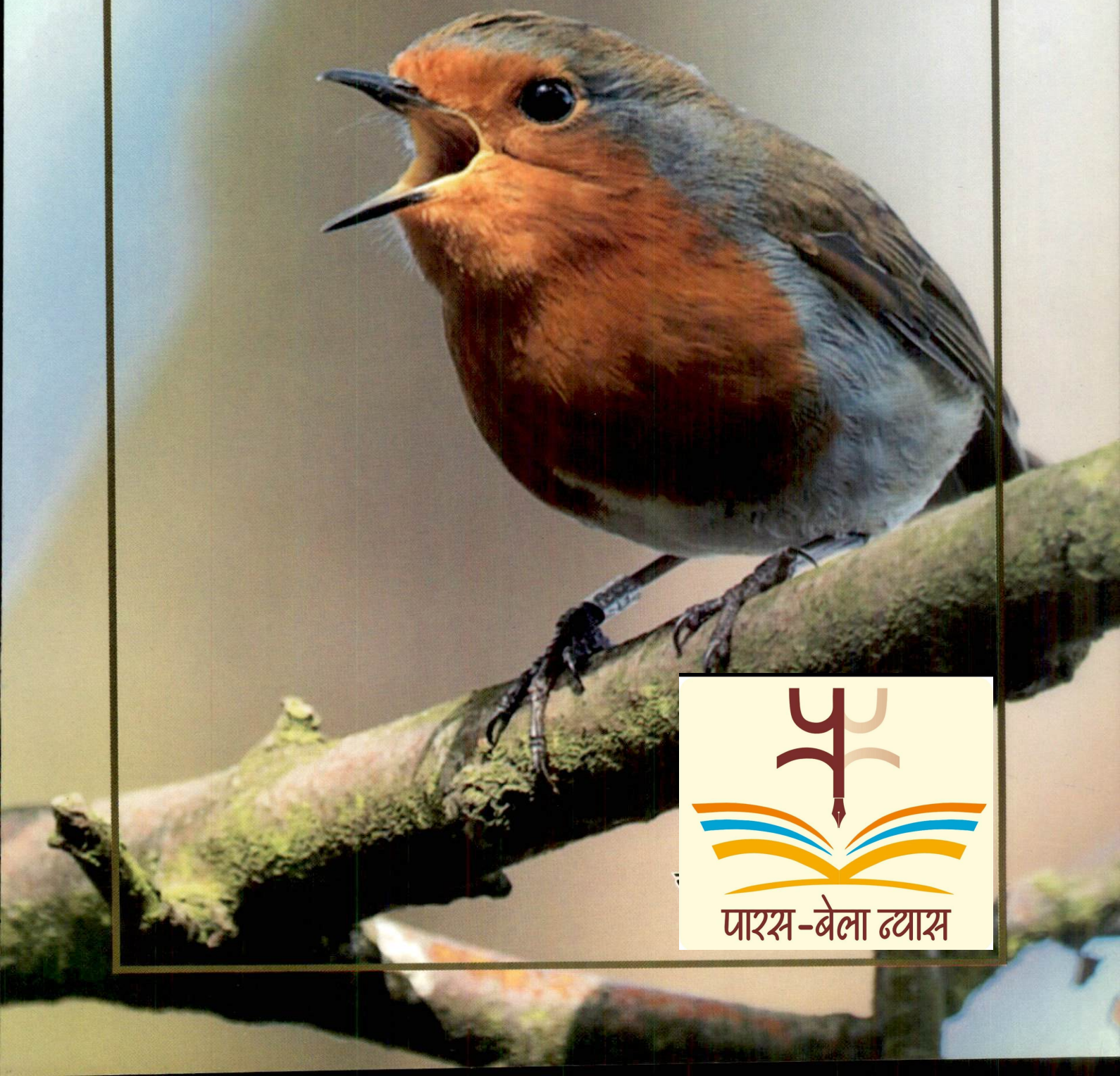

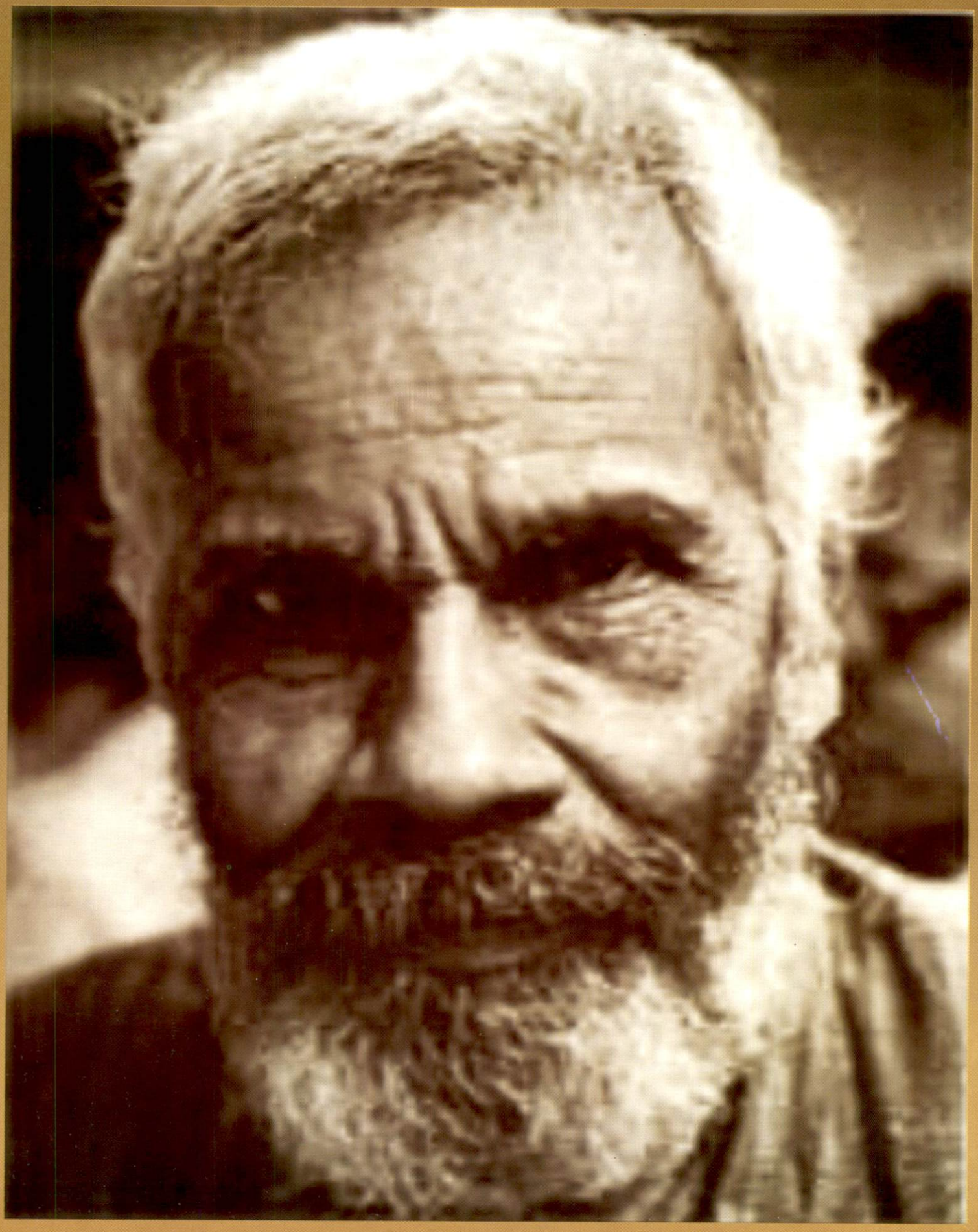

बाबा नागार्जुन (जन्म : ज्येष्ठ पूर्णिमा, 1911—निधन : 5 नव. 1998)

वर्ष–2, अंक–6, अप्रैल–जून, 2010

मूल्य : 25 रुपये

अनुक्रमणिका

पारस-पखान

(हिंदी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी)

संपादकीय 2

श्रद्धा-सुमन

बाबूजी अब करो न देर — *डॉ. अनिल कुमार* 3

कालजयी

जो मैं भी कवि... — *पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'* 4

जय राष्ट्रीय निशान! — *सोहन लाल द्विवेदी* 6

कैसा छंद — *माखनलाल चतुर्वेदी* 8

गंगा — *सुमित्रानंदन पंत* 9

कालिदास, सच-सच बतलाना! — *नागार्जुन* 11

कहाँ तो तय था चिरागाँ... — *दुष्यंत कुमार* 12

कवि वही — *डॉ. जगदीश गुप्त* 13

डॉ. उर्मिलेश के दोहे 14

समय के सारथी

कदम मिला कर चलना होगा — *अटल बिहारी वाजपेयी* 15

सोम ठाकुर के दोहे 17

दो ग़ज़लें — *तुफैल चतुर्वेदी* 18

बच्चे माँगे बालपन — *अशोक अंजुम* 20

छन्द — *डॉ. कीर्ति काले* 22

औरत के शरीर में लोहा — *आकांक्षा पारे* 24

डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल के दोहे 25

दो ग़ज़लें — *विज्ञान व्रत* 26

तीन छन्द — *अलीहसन मकरौंडिया* 27

रंग नए दिखते हैं — *डॉ. अजय पाठक* 28

नारी स्वर

आओ, जन्मदिन मनाएँ — *अजंता शर्मा* 29

प्रवासी के बोल

ठोस सन्नाटा — *तेजेन्द्र शर्मा* 31

रावण और राम — *हरिहर झा* 32

तनहाई — *कैलाश भटनागर* 34

भावी जीवन की तैयारी में — *राजेश कुमार सिंह* 35

उफनाए नद की कश्ती — *रामकृष्ण द्विवेदी 'मधुकर'* 36

नवांकुर

शिव जी के यहां चोरी — *राजेश जोशी* 37

पुस्तक समीक्षा

आदित्य की कविता में — *शिवकुमार बिलग्रामी* 38

शायरों की महफिल 40

संपादक

डॉ. सुनील जोगी

आपके सुझावों और रचनाओं का स्वागत है–

kavi**sunil**jogi@gmail.com

संरक्षक

डॉ. एल.पी. पाण्डेय;
श्री अभिमन्यु कुमार पाठक;
श्री अरुण कुमार पाठक;
श्री राजेश प्रकाश;
डॉ. अनिल कुमार;
डॉ. अशोक मधुप।

प्रवासी संपादकीय सलाहकार

डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल (नार्वे)
श्री ब्रह्म शर्मा (सिंगापुर)
श्री सी. एम. सरदार (मस्कट)

लेआउट एवं टाइपसेटिंग :

इंडिका इन्फोमीडिया, जनकपुरी, नई दिल्ली - 110058

मूल्य : 25 रुपए

वार्षिक : 100 रुपए
पंचवार्षिक : 450 रुपए
आजीवन : 5,000 रुपए
विदेशों में : $ 5
(एक अंक)

संपादकीय कार्यालय

आर-101 ए, गीता अपार्टमेन्ट
खिड़की एक्सटेन्शन,
मालवीय नगर
नयी दिल्ली - 110017
दूरभाष - 98110-05255

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक **प्रसून प्रतिष्ठान** के लिए **डॉ. अनिल कुमार** द्वारा अभिषेक प्रिंटर्स, सी, 136, फेज 1, नारायणा, इंडस्ट्रियल एरिया, नयी दिल्ली में मुद्रित एवं सी-49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड, लखनऊ से प्रकाशित। संपादक - **डॉ. सुनील जोगी**।

'पारस-पखान' में प्रकाशित रचनाओं के रचयिताओं के विचार अपने हैं। विवादास्पद मामले लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

संपादकीय

'सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम' राष्ट्रगीत के रचयिता बंगबंधु बंकिमचंद्र चटर्जी ने एक बार कहा था–"अपनी मातृभाषा बंगला में लिखकर मैं 'बंगबंधु तो हो गया, किंतु मैं 'हिंदबंधु' तभी हो सकूंगा जब भारत की राष्ट्रभाषा में लिखूंगा।" देश की जन-जन की भाषा, देश के मीडिया, फिल्म और आपसी सहज संप्रेष्य संवाद की भाषा हिंदी के संबंध में ऐसे आत्मीय विचार केवल बंगबंधु के ही नहीं थे, अपितु बहुत से अन्य शिखर व्यक्तित्वों के भी रहे हैं। एक अन्य दृष्टांत पुनः बंगाल से ही लिया जा सकता है जब कवि शिरोमणि, राष्ट्रगान के रचयिता रवीन्द्रनाथ टैगोर ने गांधीजी की प्रेरणा से हिंदी में भाषण दिया था। बाल गंगाधर तिलक तथा चक्रवर्ती राजगोपालाचारी जैसे अन्य भाषा के बड़े राष्ट्रनेताओं ने भी हिंदी को राष्ट्र निर्माण के लिए अपिरहार्य माना था। गुजराती भाषी गांधी जी का हिंदी प्रेम तो सर्वज्ञात है ही। उन्होंने कहा था–"किसी भी राष्ट्र की एकता एवं अखंडता को एक सूत्र में रखने के लिए हमें एक सहज, सुंदर और बोलचाल की भाषा की जरूरत होती है और वह हिंदी के अलावा कोई दूसरी हो ही नहीं सकती।"

आज हिंदी भाषा पर विचार किए जाने की जरूरत इसलिए आन पड़ी है कि निहित स्वार्थ में डूबकर कुछ व्यक्ति और समूह हिंदी भाषा के प्रति विषवमन कर राष्ट्रीय सौहार्द में पलीता लगाने के धतकरम में रत हैं। ऐसे लोग हिंदी को विश्वभाषा तो क्या मानेंगे वे इसे राष्ट्रभाषा तक मानने को तैयार नहीं। ऐसे लोग या तो अंग्रेजी की जूठन खाकर ऐसा अनर्गल प्रलाप कर रहे हैं या फिर क्षेत्रीय भाषा के प्रति अंधभक्ति में डूबकर। लेकिन सूरज की ओर मुंह करके थूक फेंकनेवालों का जैसा हश्र होता है वैसा ही इन लोगों के साथ भी हो रहा है। दरअसल, हिंदी आज विश्वभाषा बन गई है इसके समर्थन में तर्क और तथ्य पेश करने की जरूरत तक नहीं है, क्योंकि इस सच्चाई को कौन झुठला सकता है कि यह विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा है। क्या यही बात हिंदी को एक विश्वभाषा के रूप में समादृत होने की पुष्टि के लिए काफी नहीं? विश्व के सौ से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन चल रहा है। अब तक आठ 'विश्व हिंदी सम्मेलन' हो चुके हैं। 10 जनवरी को विश्व हिंदी दिवस मनाया जाता है। विश्व के 70 से अधिक देशों में हिंदी किसी न किसी रूप में है और तकरीबन शत-प्रतिशत देशों में हिंदी भाषी एकाधिक ही सही। अपने ही देश में कम से कम नौ राज्यों की मातृभाषा हिंदी ही है, अन्य राज्यों में बेशक यह दूसरे या तीसरे स्थान पर हो। किंतु महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत की 80 प्रतिशत जनता हिंदी जानती, समझती या बोलती है।

जाहिर है, कुछ कुंठित और निहित स्वार्थी तत्त्वों की घृणित मानसिकता से हिंदी का कुछ बनने-बिगड़ने वाला नहीं है। हिंदी अगर देश की बिंदी है, तो है। काल के भाल पर शोभित हिंदी राष्ट्र के रक्त, आंसू और पसीना यानी आम जन से वैसे ही जुड़ी है जैसे अस्थि से मज्जा। अमेरिका, चीन, ब्रिटेन, इजराइल, हालैंड आदि देशों में भी अपनी गहरी पैठ बना रही हिंदी अब तो 'रोटी प्रदाता' भाषा भी बन गई है। विश्व के कई देशों से हिंदी सिखाने वालों की मांग आ रही है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां देश में आने के लिए 'हिंदी-पथ' का उपयोग कर रही हैं। हिंदी ब्लॉग और ब्लॉगरों की नित बढ़ती संख्या हिंदी के विस्तार का ही सूचक है।

और अंत में, **पारस पखान** के इस प्रस्तुत अंक में रचनाओं के बारे में चंद शब्द–प्रस्तुत अंक में सम्मिलित रचनाओं को हमने मुख्य रूप से तीन खंडों में रखा है–कालजयी, समय के सारथी तथा प्रवासी के बोल। नारी स्वर तथा नवांकुर नाम से दो लघु खंड भी है। अपने नाम के अनुकूल ही उक्त शीर्षकों के अंतर्गत संगत और प्रासंगिक रचनाओं के समावेश और समायोजन का प्रयास किया गया है। रचनाकार अधिक हैं और हमारी सीमाएं लघु, किंतु स्थान संकुचन की समस्या के बावजूद एक संतुलित और नपा-तुला अंक आप तक पहुंचाने का हमारा प्रयास रहा है, हमारी सफलता/असफलता का मानक आपके विचार ही हैं, हमें आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

–डॉ. सुनील जोगी
(संपादक)
मोबा. : 09811005255
ई-मेल : kavi**suni**ljogi@gmail.com

बाबूजी अब करो न देर

– डॉ. अनिल कुमार

सभी आत्मजन सिसक रहे,
कुछ भी कहने से हिचक रहे।
सुध-बुध खोकर माता मेरी,
भैया-बहना सब बिलख रहे।
क्यूँ चुपचाप? मौन अब तोड़ो,
सुन इस पीड़ित मन की टेर।
बाबू जी अब करो न देर।।1।।

अपना अपराध समझ न पाये,
यमदूतों से उलझ न पाये।
क्रूर वक्त की यह बेईमानी,
हम सब कुछ भी समझ न पाये।
आर्त हृदय की पीड़ा हर लो,
दूर करो कष्टों के ढेर।
बाबू जी अब करो न देर।।2।।

तुम युग-पुरुष, अमर सरि धारा,
कालजयी व्यक्तित्व तुम्हारा।
प्रबल आत्मबल से आपूरित,
है अखण्ड विश्वास हमारा।
कलवित काल करेगा कैसे,
बन जायेगा वह तब चेर।
बाबू जी अब करो न देर।।3।।

आखिर कैसी यह लाचारी,
सोच रही अब दुनिया सारी।
सबके मसीहा, सबके प्रेरक,
हम सब हैं तेरे आभारी।
कर्मयोग के पोषक बाबू,
समझूँ क्यों किस्मत का फेर।
बाबू जी अब करो न देर।।4।।

जो मैं भी कवि हो जाता

– पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

जो मैं भी कवि हो जाता!
सन्ध्या की अलसित आँखों में,
और कुसुम की मधु पाँखों में,
छोड़ जगत की चहल-पहल को,
व्यर्थ न मन को मैं भरमाता।
जो मैं भी कवि हो जाता।।

कभी सितारों से मिलकर मैं,
कभी तरंगों से तिरकर मैं,
इसी जगती से दूर हटाकर,
कभी न अपना मन बहलाता।
जो मैं भी कवि हो जाता।।

जगती से दूर गई मानवता,
तब मन मेरा सोचा करता,
मैं देवों का अर्चन करता,
या मानवता को गीत सुनाता।
जो मैं भी कवि हो जाता।।

अनुभव रहित कल्पना कोरी,
प्रणय बूँद की करके चोरी,
आहत हृदय विकंपित उर की,
क्या मैं इनसे प्यास बुझाता?
जो मैं भी कवि हो जाता।।

रूप-रश्मि की मधु ज्वाला में,
और अधर कंपित हाला में,
एक बूँद सरिता के जल का,
कभी न मैं उपहास कराता।
जो मैं भी कवि हो जाता।।

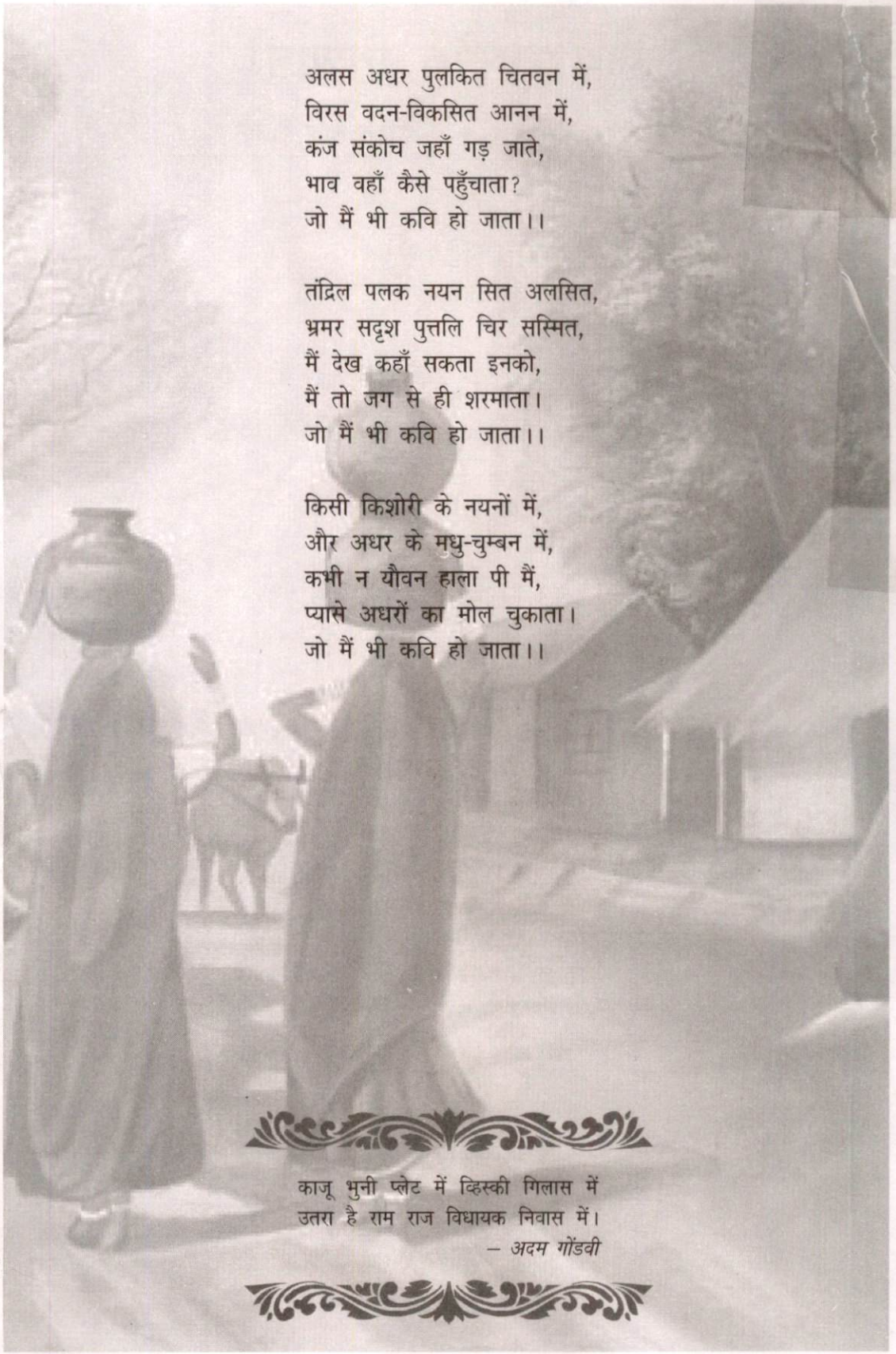

अलस अधर पुलकित चितवन में,
विरस वदन-विकसित आनन में,
कंज संकोच जहाँ गड़ जाते,
भाव वहाँ कैसे पहुँचाता?
जो मैं भी कवि हो जाता।।

तंद्रिल पलक नयन सित अलसित,
भ्रमर सदृश पुत्तलि चिर सस्मित,
मैं देख कहाँ सकता इनको,
मैं तो जग से ही शरमाता।
जो मैं भी कवि हो जाता।।

किसी किशोरी के नयनों में,
और अधर के मधु-चुम्बन में,
कभी न यौवन हाला पी मैं,
प्यासे अधरों का मोल चुकाता।
जो मैं भी कवि हो जाता।।

काजू भुनी प्लेट में व्हिस्की गिलास में
उतरा है राम राज विधायक निवास में।
– अदम गोंडवी

जय राष्ट्रीय निशान!

– सोहन लाल द्विवेदी

जय राष्ट्रीय निशान!
जय राष्ट्रीय निशान!
जय राष्ट्रीय निशान!

लहर-लहर तू मलय पवन में,
फहर-फहर तू नील गगन में,
छहर-छहर जग के आँगन में,

सबसे उच्च महान!
सबसे उच्च महान!
जय राष्ट्रीय निशान!

जब तक एक रक्त कण तन में,
डिगें न तिल भर अपने प्रण में,
हाहाकार मचावें रण में,

जननी की संतान!
जननी की संतान!
जय राष्ट्रीय निशान!

मस्तक पर शोभित हो रोली,
बढ़े शूरवीरों की टोली,
खेलें आज मरण की होली,

बूढ़े और जवान!
बूढ़े और जवान!
जय राष्ट्रीय निशान!

मन में दीन-दुखी को ममता,
हम में हो मरने की क्षमता,

कालजयी

मानव मानव में हो समता,

धनी-गरीब समान
गूँजे नभ में तान
जय राष्ट्रीय निशान!

तेरा मेरुदंड होकर मैं,
स्वतन्त्रता के महासमर में,
वफा शक्ति बन व्यापे उर में,

दे दें जीवन-प्राण!
दे दें जीवन-प्राण!
जय राष्ट्रीय निशान!

भेज सकता है काग़ज़ के बम भी कोई
ऐसे झटके से मत चिट्ठियां खोलिए।
– ओम प्रकाश यती

कैसा छंद

– माखनलाल चतुर्वेदी

कैसा छंद बना देती हैं
बरसातें बौछारों वाली,
निगल-निगल जाती हैं बैरिन
नभ की छवियाँ तारों वाली!

गोल-गोल रचती जाती हैं
बिंदु-बिंदु के वृत्त बना कर,
हरी-हरी-सी कर देता है
भूमि, श्याम को घना-घना कर।

मैं उसको पृथिवी से देखूँ
वह मुझको देखे अंबर से,
खंभे बना-बना डाले हैं
खड़े हुए हैं आठ पहर से।

सूरज अनदेखा लगता है।
छवियाँ नव नभ में लग आतीं,
कितना स्वाद ढकेल रही हैं
ये बरसातें आतीं-जातीं?

इनमें श्याम सलोना ढूँढ़ो
छुपा लिया है अपने उर में,
गरज, घुमड़, बरसन, बिजली-सी
फल उठी सारे अंबर में!

घर के झीने-रिश्ते मैंने लाखों बार उघड़ते देखे
चुपके-चुपके कर देती है, जाने कब तुरपाई अम्मा।
– आलोक श्रीवास्तव

गंगा

– सुमित्रानंदन पंत

अब आधा जल निश्चल, पीला
आधा जल चंचल औ', नीला
गीले तन पर मृदु संध्यातप
सिमटा रेशम पट-सा ढीला!

ऐसे सोने के साँझ-प्रात,
ऐसे चाँदी के दिवस-रात,
ले जाती बहा कहाँ गंगा
जीवन के युग-क्षण–किसे ज्ञात!

विश्रुत हिम पर्वत से निर्गत,
किरणोज्ज्वल चल कल उर्मि निरत,
यमुना गोमती आदी से मिल
होती यह सागर में परिणत।

यह भौगोलिक गंगा परिचित,
जिसके तट पर बहु नगर प्रथित,
इस जड़ गंगा से मिली हुई
जन गंगा एक और जीवित!

वह विष्णुपदी, शिवमौलि सुता,
वह भीष्म प्रसू औ' जह्न सुता,
वह देव निम्नगा, स्वर्गंगा,
वह सगर पुत्र तारिणी श्रुता।

वह गंगा, यह केवल छाया,
वह लोक चेतना, यह माया,
वह आत्मवाहिनी ज्योति सरी,
यह भू पतिता, कंचुक काया।

कालजयी

वह गंगा जन मन से निस्सृत,
जिसमें बहु बुदबुद युग निर्तित,
वह आज तरंगित संसृति के
मृत सैकत को करने प्लावित।

दिशि-दिशि का जन-मन वाहित कर,
वह बनी अकूल अतल सागर,
भर देगी दिशि पल पुलिनों में
वह नव-नव जीवन की मृदु उर्वर!

अब नभ पर रेखा शशि शोभित
गंगा का जल श्यामल कंपित,
लहरों पर चाँदी की किरणें
करती प्रकाशमय कुछ अंकित!

वो भी मेरे संग रहेगा, जब तक साथ उजाला है
साया आख़िर साया ठहरा, उसका यार भरोसा क्या!
– डॉ. अजय जनमेजय

कालिदास, सच-सच बतलाना!

– नागार्जुन

इंदुमती के मृत्यु-शोक से
अज रोया या तुम रोए थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना!

शिवजी की तीसरी आँख से
निकली हुई महाज्वाला में
घृतमिश्रित सूखी समिधा सम
तुमने ही तो दृग धोए थे
कालिदास, सच-सच बतलाना!
रति रोई या तुम रोए थे?

वर्षा-ऋतु की स्निग्ध भूमिका
प्रथम दिवस आषाढ़ मास का
देख गगन में श्याम घनघटा
विधुर यक्ष का मन जब उचटा
चित्रकूट के सुभग शिखर पर
खड़े-खड़े तब हाथ जोड़कर
उस बेचारे ने भेजा था
जिनके ही द्वारा संदेशा,
उन पुष्करावर्त मेघों का
साथी बनकर उड़ने वाले
कालिदास, सच-सच बतलाना!

पर-पीड़ा से पूर-पूर हो
थक-थक कर औ' चूर-चूर हो
अमल-धवलगिरि के शिखरों पर
प्रियवर तुम कब तक सोए थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना!
रोया यक्ष कि तुम रोए थे?

कहाँ तो तय था चिरागाँ हर एक घर के लिए

– दुष्यंत कुमार

कहाँ तो तय था चिरागाँ हर एक घर के लिए
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए

यहाँ दरख़्तों के साये में धूप लगती है
चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए

न हो कमीज तो पाँओं से पेट ढँक लेंगे
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए

ख़ुदा नहीं न सही आदमी का ख़्वाब सही
कोई हसीन नज़ारा तो है नज़र के लिए

वो मुतमइन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता
मैं बेकरार हूँ आवाज में असर के लिए

तेरा निजाम है सिल दे जुबान शायर की
ये एहतियात जरूरी है इस बहर के लिए

जिएँ तो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले
मरें तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए

जितना कम सामान रहेगा,
उतना सफ़र आसान रहेगा
जब तक मंदिर और मस्ज़िद हैं
मुश्किल में इंसान रहेगा।
–गोपालदास 'नीरज'

कवि वही

– डॉ. जगदीश गुप्त

कवि वही जो अकथनीय कहे
किंतु सारी मुखरता के बीच मौन रहे
शब्द गूंथे स्वयं अपने गूथने पर
कभी रीझे कभी खीझे कभी बोल सहे
कवि वही जो अकथनीय कहे।

सिद्ध हो जिसको मनोमय मुक्ति का सौन्दर्य साधन
भाव झंकृति रूप जिसका अलंकृति जिसका प्रसाधन
सिर्फ़ अपना ही नहीं सबका ताप जिसे दहे
रूष्ट हो तो जगा दे, आक्रोश नभ का
द्रवित हो तो सृष्टि सारी साथ-साथ बहे।

शक्ति के संचार से
या अर्थ के संभार से
प्रबल झंझावात से
या घात प्रत्याघात से
जहां थकने लगे वाणी स्वयं हाथ गहे।

शांति मन में क्रांति का संकल्प लेकर टिकी हो
कहीं भी गिरवी न हो ईमान जिसका
कहीं भी प्रज्ञा न जिसकी बिकी हो
जो निरंतर नयी रचनाधर्मिता से रहे पूरित
लेखनी जिसकी कलुष में डूब कर भी
विशद उज्जवल कीर्ति लाभ लहे
कवि वही जो अकथनीय कहे।

अगर दीवार ही उठनी है तो शीशे की हो भाई
उधर भी रोशनी जाए, इधर भी रोशनी आए।
– *कमलेश भट्ट कमल*

डॉ. उर्मिलेश के दोहे

कितने ज़ालिम हो गये इस युग के हालात।
हरियाली की तरक्की करती है बरसात।।

प्रान्तवादियो, क्यों नहीं करते जरा ख़याल।
कटकर कैसे पेड़ से हरी रहेगी डाल।।

तरह-तरह की जातियाँ तरह-तरह के देश।
इन्द्रधनुष-सा दीखता अपना भारत देश।।

भाषा, भोजन, भेष का बदल रहा परिवेश।
अब स्वदेश में उग रहा पग-पग एक विदेश।।

आँखों से आँखें मिली हुए इशारे चार।
'फास्ट फूड'-सा हो गया वह रस-भीना प्यार।।

बच्चों को भी घूस का चढ़ने लगा बुखार।
चॉकलेट दो जब इन्हें तब देंगे यह प्यार।।

वे लम्बे, आँसू भरे पत्र हुए गुमनाम।
'हाय-हलो' से चल रहा आज सभी का काम।।

इस युग का यह पुण्य है, समझें इसे न पाप।
उल्लू बनकर कीजिए उल्लू सीधा आप।।

सो जाते हैं फुटपाथ पे अख़बार बिछा कर
मज़दूर कभी नींद की गोली नहीं खाते।
– मुनव्वर राना

कदम मिला कर चलना होगा

– अटल बिहारी वाजपेयी

बाधाएं आती हैं आयें
घिरें प्रलय की घोर घटायें,
पांवों के नीचे अंगारे,
सिर पर बरसें यदि ज्वालायें,
निज हाथों में हंसते-हंसते,
आग लगाकर जलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।

हास्य-रूदन में, तूफानों में,
अगर असंख्यक बलिदानों में,
उद्यानों में, वीरानों में,
अपमानों में, सम्मानों में,
उन्नत मस्तक, उभरा सीना,
पीड़ाओं में पलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।

उजियारे में, अंधकार में,
कल कहार में, बीच धार में,
घोर घृणा में, पूत प्यार में,
क्षणिक जीत में, दीर्घ हार में,
जीवन के शत-शत आकर्षक,
अरमानों को दलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।

सम्मुख फैला अगर ध्येय पथ,
प्रगति चिरंतन कैसा इति अथ,
सुस्मित हर्षित कैसा श्रम श्लथ,
असफल, सफल समान मनोरथ,
सब कुछ देकर कुछ न मांगते,
पावस बनकर ढलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।

समय के सारथी

कुछ कांटों से सज्जित जीवन,
प्रखर प्यार से वंचित यौवन,
नीरवता से मुखरित मधुवन,
परहित अर्पित अपना तन-मन,
जीवन को शत-शत आहुति में,
जलना होगा, गलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।

दिल पे मुश्किल है बहुत दिल की कहानी लिखना
जैसे बहते हुए पानी पे हो पानी लिखना।
– डॉ. कुंअर बेचैन

सोम ठाकुर के दोहे

ये मदमाते रस-भरे, ऐन-बैन के सैन।
हुए बिहारी लाल के, दोहे तेरे नैन।।

अब किसका डर है मुझे, अब किसकी परवाह।
रहमत तेरे हाथ है, मेरे हाथ गुनाह।।

बदल गये सब रूप अब, बदल गये सब रंग।
सरबन अब अपनी कथा, ले जा अपने संग।।

कुटुम-कबीले अब कहाँ? कहाँ वंश-परिवार।
रहे न वे माता-पिता, रहे न श्रवन कुमार।।

तेरे-मेरे बीच में एक अदेखी आड़।
मिलने पर लगने लगा तिल की ओट पहाड़।।

बदला युग, बदली दिशा, बदल गया परिवेश।
हाट रूप की रच रहा, उद्यमियों का देश।।

माला जय-जयकार है, झुकी सलामी संग।
लोकतंत्र में देखिए, राजतंत्र के रंग।।

देखे इस दरबार में, अजब-अनोखे खेल।
पूँछ हिले, कुर्सी मिले, होंठ हिले पर, जेल।।

नन्ही-सी चिड़िया बाज़ के पंजों में देखकर
सपनों में रात भर उसे बिटिया दिखाई दी।
– मंगल नसीम

दो ग़ज़लें

– तुफैल चतुर्वेदी

(एक)

फागुन से मेरे भी रिश्ते निकलेंगे,
हाँ, सूखा हूँ लेकिन पत्ते निकलेंगे।

रिश्तेदारों से उम्मीदें क्यों की थीं,
फ़ज़ूरी आमों में तो रेशे निकलेंगे।

बरसों से सच्चाई के ग़म हैं दिल में,
इतने काँटे धीरे-धीरे निकलेंगे।

मुश्किल है तो मुश्किल से घबराना क्या,
दीवारों में ही दरवाज़े निकलेंगे।

लोग अक़ीदत पर तेशा मारें लेकिन,
गंगा के पानी में सिक्के निकलेंगे।

टूटे-फूटे दिल हैं, फिर भी मत फेंको,
इनमें कुछ तो काम के पुरज़े निकलेंगे।

मुमकिन हो तो चार बजे तक आ जाना,
शाम ढले आँसू, आँखों से निकलेंगे।

* * *

यूं तो वो बेवफ़ा नहीं लगता
पर किसी का पता नहीं लगता।
– *पवन दीक्षित*

(दो)

दिलों के ज़हर को शाइस्तगी ने काट दिया,
अँधेरा था तो घना, रोशनी ने काट दिया।

बड़ा तवील सफ़र था हयात का लेकिन,
ये रास्ता मेरी आवारगी ने काट दिया।

लगा निशाना तो सारा घमंड टूट गया,
परों का ज़ोर बस इक कंकरी ने काट दिया।

हमें हमारे उसूलों से चोट पहुँची है,
हमारा हाथ हमारी छुरी ने काट दिया।

तुम अगले जन्म में मिलने की बात करते थे,
ये फ़ासला तो मेरी खुदकुशी ने काट दिया।

जिगर के टुकड़े, मेरे आँसुओं में आने लगे,
बहाव तेज़ था, पुश्ता नदी ने काट दिया।

शकेब, बानी, मुज़फ्फर, जफ़र, बशीर, निदा,
ग़ज़ल का हब्स नई शायरी ने काट दिया।

दोस्त पे करम करना और हिसाब भी रखना
कारोबार होता है, दोस्ती नहीं होती
– हस्तीमल 'हस्ती'

बच्चे माँगे बालपन

– अशोक अंजुम

ऊपर वाले भूल मत, बच्चे तेरा रूप।
असमय मुरझाने लगें, दे मत इतनी धूप।।

बच्चे हरियल पेड़ हैं, बच्चे नदी, पहाड़।
धीरे-धीरे सीखते करना तिल का ताड़।।

बच्चे टूटें शाख से, ज्यों मुरझाए पात।
पतझड़ से रिश्ता बना, किया समय ने घात।।

बच्चे माँगे बालपन, पुस्तक, कॉपी, स्लेट।
पर मिल वाले सेठ का, बहुत बड़ा है पेट।।

बच्चे कैसे खेलते, बच्चों वाले खेल।
लिखी हुई थी भाग्य में, जब मिल वाली जेल।।

बच्चे बुड्ढे हो रहे, पड़ी समय की मार।
हाथ हथौड़ा थामकर, भूल गए अधिकार।।

थामे हुए कुदाल हैं, नन्हे-नन्हे हाथ।
बचपन की अठखेलियाँ, जुड़ीं न इनके साथ।।

बच्चे सपनों में जियें, जादू-भरा चिराग़।
आँख खुलीं तो सामने, भट्ठी वाली आग।।

बच्चे हर पल पी रहे, धुन्ध, धुएँ के घूँट।
क्या करवट ले क्या पता, ये आफ़त का ऊँट।।

बचपन तुझको है नमन, निभा रहा यूँ फर्ज़।
दवा याद माँ की रही, औ' बापू का कर्ज़।।

बच्चे जल्दी पक रहे, गर्म हुआ परिवेश।
वापस माँगें बालपन, लौटा मेरा देश।।

बच्चों के मुँह में सजे, बीड़ी, गुटखा, पान।
इनमें थी मासूमियत, उसका हुआ प्रयाण।।

बच्चे घर का आईना, बच्चे घर के फूल।
अरे विधाता संगदिल, दे मत इतनी धूल।।

गुरु-राक्षस रक्त की, माँग रहा है फीस।
देकर नन्हे हाथ में, ए.के. सैंतालीस।

एक वीराना जहां उम्र गुजारी मैंने
तेरी तस्वीर लगा दी है तो घर लगता है।
– राहत इन्दौरी

छन्द

– डॉ. कीर्ति काले

नीम की निबोरी भोली भाली एक छोरी,
जब, दर्पण देख के सिंगार करने लगे।
सपनों में खोई, जागी-जागी सोई-सोई,
भूल जानबूझकर बार-बार करने लगे।
फूल-सी महक बात-बात में चहककर,
पतझर को भी जो बहार करने लगे।
शरम से लाल, गोरे-गोरे होंगे गाल,
गोरी, जब छुप-छुपकर प्यार करने लगे।

* * *

फूलबाग से धरा पे उतरा अनंग,
अंग-अंग में उमंग का हुलास भरने लगा।
पहली बहार पर रूप का निखार,
पीली ओढ़नी की ओट से इशारे करने लगा।
अल्हड़ अबोध आयु का सिंगार देख-देख,
आईना भी आज बनने-संवरने लगा।
पोर-पोर में बजे मृदंग जल तरंग,
बौर-बौर से बसन्त का पराग झरने लगा।

* * *

मैं भी दरिया हूं मगर सागर मेरी मंज़िल नहीं।
मैं भी सागर हो गया तो मेरा क्या रह जाएगा।
– राजगोपाल सिंह

सावन की ऋतु आई बरखा बहार लाई,
टंकने लगे हैं हीरे-मोती पात-पात में।
मनवा के फूल-फूल झूलन में झूल-झूल,
इतरा रहे हैं देखो बात बिना बात में।
बादल भी घूम-घूम बिजुरी को चूम-चूम,
फिरता है झूम-झूम रात में प्रभात में
राम की कसम तोड़ अपनों से मुख मोड़,
जाओ ना अकेला छोड़ बैरी बरसात में।

* * *

तन में तरंग लिए मन में उमंग लिए,
लाल-पीले रंग में रंगी हैं पिचकारियाँ।
अबीर गुलाल से सजे हैं थाल-थाल देखो,
कैसा है कमाल खुली केसर की क्यारियाँ।
निठुर कन्हाई ने जो पकड़ी कलाई,
गोपियों ने दी दुहाई भरभर सिसकारियाँ
काम की कमन्द हैं या जायसी का छन्द हैं,
या फूलों की सुगन्ध हैं ये मीठी चिनगारियाँ।

जिससे दब जाएं कराहें घर की
कुछ न कुछ शोर मचाए रखिए।
– दीक्षित दनकौरी

औरत के शरीर में लोहा

– आकांक्षा पारे

औरत लेती है लोहा हर रोज
सड़क पर, बस में और हर जगह
पाए जाने वाले आशिकों से

उसका मन हो जाता है लोहे का
बचतीं नहीं संवेदनाएँ

बड़े शहर की भाग-दौड़ के बीच
लोहे के चने चबाने जैसा है
दफ्तर और घर के बीच का संतुलन
कर जाती है वह यह भी आसानी से

जैसे लोहे पर चढ़ाई जाती है सान
उसी तरह वह भी हमेशा
चढ़ी रहती है हाल पर

इतना लोहा होने के बावजूद
एक नन्ही किलकारी
तोड़ देती है दम
उसकी गुनगुनी कोख में
क्योंकि
डॉक्टर कहते हैं
ख़ून में लोहे की कमी थी।

राजभवनों की तरफ़ जायें न फ़रियादें।
पत्थरों के पास अभ्यन्तर नहीं होता
ये सियासत की तवायफ़ का दुपट्टा है
ये किसी के आँसुओं से तर नहीं होता।

–शिव ओम अम्बर

डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल के दोहे

महक भेज कर पत्र में, भेजा यह पैगाम।
उड़ जाएगी एक दिन, यही प्रीति-अंजाम।।

भेद-भाव को भूलकर, देखेगा जिस ओर।
पल-भर में जुड़ जाएगी, संबंधों की डोर।।

नदी उफनती जिंदगी, तेज हवा की चाल।
बिछे हुए हैं दूर तक, मछुआरों के जाल।।

नस-नस में भरने लगी, कड़वी-कड़वी बात।
शहर नहीं भाता मुझे, लौट चलो देहात।।

किस-किसको समझाऊंगा, त्याग-तपस्या-प्यार।
अच्छा है खुद सीख लूँ, दुख के भेद हजार।।

खुशी जगत में बहुत है, मगर शर्त है एक।
संघर्षों के राज्य में, करो कर्म-अभिषेक।।

दर्द दिया जिसने वही, कर पाया उपचार।
जितना-जितना चाहता, उतना बाँट दुलार।।

एक जगह मैं आदमी, एक जगह हैवान।
ये कैसा सद्धर्म है, तू ही कह भगवान।।

बेकार का झगड़ा है, बात अपनी खुशी की है
मन्दिर भी उसी का है, मस्ज़िद भी उसी की है।
—राजेन्द्र तिवारी

दो ग़ज़लें

– विज्ञान व्रत

1.

एक सवेरा साथ रहे?
कोई बच्चा साथ रहे।

एक भरोसा साथ रहे,
कोई घर का साथ रहे।

वक्त बुरा है, ऐसे में,
कोई अपना साथ रहे।

जब खुद को ताबीर करूँ
तेरा सपना साथ रहे।

तनहा लौटा हूँ, आखिर,
कोई कितना साथ रहे।

2.

कोई बोला कोई है?
मैं ये समझा कोई है।

खुद में डूब सके जो खुद?
इतना गहरा कोई है।

इन कद्दावर लोगों में,
अपने कद का कोई है।

मुझको राह दिखाए जो,
ऐसा रास्ता कोई है।

वो मेरा दुश्मन यानी,
मेरा अपना कोई है।

तीन छन्द

– अलीहसन मकरैंडिया

धन न रतन माँगू, धरा न गगन माँगू,
किन्तु भ्रष्ट कामों का, शमन होना चाहिए।
श्रमिकों का मान माँगू, संतों का सम्मान माँगू,
माँगता, शहीदों को, नमन होगा चाहिए।
मानव का मन मिले, सुमन सुगंध खिले,
'हसन' का मन भी, चमन होना चाहिए।
धरम है सब ठीक, निज विधि पूजा करो,
धरम से पहले, वतन होना चाहिए।

* * *

कहते हैं गाँवों का विकास कम हुआ पर,
मारुति में घूमते प्रधान देख लीजिए।
विकास की बढ़ी दर, गली-गली, गाँव-गाँव,
बढ़ी हुई दारू की दुकान देख लीजिए।
बैठे बेईमान कुछ, संसद में इन दिनों,
बेच रहे सांसद, ईमान देख लीजिए।
सरकारी गोदामों में सड़ता अनाज पर,
भूखे यहाँ मरते, किसान देख लीजिए।

* * *

जैसे देश भक्ति में है स्वाभिमान-सम्मान
मेरे मन ही गीता-बाईबिल-कुरान हैं।
गुरुद्वारा, मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर,
मेरे वास्ते ये चारों तीरथ समान हैं।
न मैं गया हरिद्वार, न प्रयाग, न ही काशी,
देवता समस्त दिल ही में विद्यमान हैं
शहीदों के जय-गान, वेद-व्याख्यान जैसे,
उनके लहू से शुद्ध भारत महान है।

* * *

रंग नए दिखते हैं

– डॉ. अजय पाठक

रिश्तों ने बाँधा है जब से अनुबंध में,
रंग नए दिखते हैं गीतों में, छंद में।

शब्द सभी अनुभव के अनुगामी लगते हैं
अनचाहे उन्मन से अधरों पर सजते हैं।
सब कुछ ही कह जाते अपने संबंध में,
रंग नए दिखते हैं गीतों में, छंद में।

अंतर के भावों में सागर लहराता है,
सुधियों के बंधन से आकर टकराता है।
धीरज रुक जाता है अपने तटबंध में
रंग नए दिखते हैं गीतों में, छंद में।

नयनों में सतरंगे सपनों की डोली है,
साँसों में सरगम की भाषा है बोली है।
जीवन की ऊर्जा है परिचित-सी गंध में,
रंग नए दिखते हैं गीतों में, छंद में।

नेहों की निधियों का संचय कर लेने को,
सुधियों में स्नेहिल-सी बातें भर लेने को।
आतुर मन रहता है इसके प्रबंध में,
रंग नए दिखते हैं गीतों में, छंद में।

जनता का हक़ मिले कहाँ से, चारों तरफ़ दलाली है
चमड़े का दरवाज़ा है, और कुत्तों की रखवाली है।
–बी. आर. विप्लवी

आओ, जन्मदिन मनाएँ

– अजंता शर्मा

हैप्पी बर्थ डे स्वतंत्र भारत।
यादों और वादों के छिछले मंच पर
स्वागत है तुम्हारा।

देखो न!
तुम्हारे स्वागत में
इस कोने से उस कोने तक
किस करीने ने उलटी लटकी हैं
हरी नीली नारंगी रंगी हुई
हिमालय पर्वत शृंखलाओं की झंडियाँ

सुनो!
इन बैलूनों का विस्फोट
इन गिफ्ट पैकेटों में कुलबुलाती
नारों की प्रतिध्वनियाँ।

आओ!
मुँह फुलाओ?
फूँक की औपचारिकता निभाओ।
ये साठों मोमबत्तियाँ
पहले से ही फुँकी हुई हैं।

अब,
केक काटो।
देखो न!
सब के सब
इसी इंतजार में मुँह बाए खड़े हैं
निगलने के लिए।

ध्यान रखना!
केक पर सजे अपेक्षाओं के थक्के
जैसे सबके हिस्से में जाएं।

कोई डर नहीं।
ये आँतें सब पचा लेती हैं...
इतिहास
जन्म
नाम
कविताएँ
संघर्ष
रक्त
त्याग
अरमान
...सब!

अब तो मज़हब कोई ऐसा भी चलाया जाए
जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए।
—गोपाल दास 'नीरज'

निवेदन

■ आप मेरे ई मेल-आई डी kavi**sunil**jogi@gmail.com पर विज्ञापन या रचनाएं भेजकर पत्रिका की निरंतरता में अपना योगदान दे सकते हैं।

■ समीक्षा के लिए अपनी सद्यःप्रकाशित पुस्तक की दो प्रतियां हमें भेज सकते हैं।

■ यदि 'पारस-पखान' आपको पसंद है, तो उसके नियमित सदस्य बनिए। स्वयं पढ़कर और दूसरों को भी इसका सदस्य बनाकर आप हमारे अभियान में सहभागी बन सकते हैं। कम-से-कम तीन से पांच वर्ष हेतु सदस्य बनने के लिए संपादकीय कार्यालय में अपनी धनराशि प्रेषित करें।

ठोस सन्नाटा

– तेजेन्द्र शर्मा (लंदन)

हाँ घर में अंधेरा है
दीवार-सा ठोस सन्नाटा
आवाज़ टकराती है
वापिस चली आती है।

अरुण पश्चिम को छोड़
पूर्व की ओर चल दिया है
ऐसा भी होता है कभी
मगर हुआ है, ऐसा ही।

दीप्ति अरुण की अकेली है
यश मिलेगा कैसे
दूरियों के अर्थ क्या हैं
अंधेरों को रौशनी डराती है।

नियंत्रण छूटता जाता है
केन्द्र कमज़ोर पड़ता जाता है
नहीं चला पाता हूँ पटरी पर
जीवन की रेल बहुत टेढ़ी है।

सावन को रोक नहीं पाओगे
उसको आना है आ ही जायेगा
सूखा जो ज़िन्दगी में फैला है
फूल उसमें वही खिलायेगा।

दूसरे उस शख्स के घर, रोशनी है किसलिए
मैं दुखी हूं इसलिए कि वो सुखी है किसलिए।
—लक्ष्मण

रावण और राम

– **हरिहर झा** (आस्ट्रेलिया)

अमरत्व की आकांक्षा से लथपथ रावण
कांचन कामिनी के पीछे भागता
अहं–
जो धुएं की लकीर
उसे बचाने के लिए भागता

रंगोली को मिट्टी समझ
मिटा देता यहां-वहां
दस मुखों वाली पहचान–
बेचारा छुपाएगा कहां?

घबराता सूर्य से
उसे जीत लेने का दंभ भरता
झूठी तसल्ली के लिए
उसका दस की गिनती में आवाहन करता

कलुषित भाव कुछ दे न पाया
पर झनकती तमन्ना सिर निकालती
खुजला-खुजला कर पीड़ा को
सुख पाने की इच्छा पालती

मृगतृष्णा का छोर न मिला
पाप पुण्य से कैसे लड़े?
सिंहासन डगमगाने लगा
मृत्यु के देव सामने खड़े

मैंने उल्फ़त तेरी धड़कन में छिपा रखी है
अपने ही साथ अपने ग़म की दवा रखी है।
–अनुराग मिश्र ग़ैर

तो छोड़ कर अपनी काया
ज़मीर के कण बिखरेता हुआ
घुलमिल गया हम सब की अस्थि-मज्जा में
नख-शिख तक वही लंकेश
अपनी पूरी साज़-सज्जा में

बस, अब मन का राम
मुदित, सुरक्षित
साथ में रावण
तो अब फिर से
अयोध्या का राज छोड़ कर
राम जंगल नहीं मांगेगा
धोबी के कहने पर
सीता को नहीं त्यागेगा

लो, वृत्तियों की वानर-सेना को मिला
लंका-दहन का काम
अब भीतर ही भीतर लड़ लेंगे।
रावण और राम।

ज़मीनों की हदें तो सिर्फ नफ़रत का बहाना हैं
यहाँ तो लोग सीने में लिए दीवार निकले हैं।
–प्रो. भगवानदास जैन

तनहाई

– **कैलाश भटनागर** (अमेरिका)

बीते हुए कुछ दिन ऐसे हैं तन्हाई जिन्हें दोहराती है।

परदे पर तसव्वर के एक एक तस्वीर उतरती आती है।
एक फिल्म सी रंगीन यादों की नज़रों से गुजरती जाती है।
गम की घनघोर घटाओं में, बिजली सी कोई लहराती है।
हर टीस मेरे दिल से उठ कर, आंखों को मेरे छलकाती है।
बीते हुए कुछ दिन ऐसे हैं तन्हाई जिन्हें दोहराती है।

वो शाम के गहरे सायों में, छुप-छुप के किसी का आ जाना।
पलकों को झुका कर कुछ कहना, वो शर्माना वो घबराना।
भूले से न अपने होंठों पर एक हरूफ शिकायत का लाना
आंखों के चमकते गोशों से कुछ प्यार के मोती बरसाना।
बीते हुए कुछ दिन ऐसे हैं तन्हाई जिन्हें दोहराती है।

वो सुबह की पहली किरणों में पनघट के सुहाने नज़ारे
वो गांव की अल्हड़ छोरियां, वो हुस्न के दहकते अंगारे।
वो लहराते पल्लू बेनकाब जलवे झर झर चश्में व नदी के धारे
पेड़ के नीचे बैठे कुछ दिल के हारे दिल के मारे
बीते हुए कुछ दिन ऐसे हैं तन्हाई जिन्हें दोहराती है।

माना कि अफसाना बन गई हर एक हकीकत माजी की,
अफसाने से बढ़ कर दिलकश है हर एक हिकायत माजी की।
मिटती है मिटाने से भी कहीं वो शक्ल वो सूरत माजी की।
छाई रहती है वो मेरे दिल पर तस्वीरें मोहब्बत माजी की
बीते हुए कुछ दिन ऐसे हैं तन्हाई जिन्हें दोहराती है।

बहू जिंदा जला दी जाती है इस बात को सुनकर
मेरी मासूम बेटी शादी से इन्कार करती है।
–डॉ. मीना नक़वी

भावी जीवन की तैयारी में

– राजेश कुमार सिंह (इंडोनेशिया)

जब-जब आंखों में, सिंहासन के,
ख्वाब दिखे,
हम प्रतिपल प्रति दिन-रात चले,
कहने को सत्ता मिली, किंतु,
रहने को कारावास मिले।

सौरभ सुमनों के लिए, कई बरसों
तक की, हमने बाट तकी,
जब इनको भी मुरझाते,
कुचले जाते देखा,
फिर जाती यह भी आस रही।

कुछ बात नहीं हम कह पाए,
कुछ बात नहीं हम सह पाए,
कुछ दर्द रह गए सीने में,
कुछ बात रह गई जीने में।

गंधर्वों के उत्सव में भी हम,
शामिल थे, एक पुजारी से
कुछ मंत्र पढ़े, कुछ भूल गए,
भावी जीवन की तैयारी में।

नई तहज़ीब को अपना सभी कुछ मान लेता है
मेरा बेटा मुझी पर आज, मुट्ठी तान लेता है।
–कृष्ण कुमार 'नाज़'

उफनाए नद की कश्ती

– रामकृष्ण द्विवेदी 'मधुकर' (ओमान)

उफनाए नद की कश्ती सम बहे जा रहे हैं।
नहीं पता पतवार फेंक हम कहां जा रहे हैं।।

इतना जगमग बाहर दिखता
घर की ज्योति पड़ी फीकी।
घर के शब्दों को चुप करके
सुनी सदा बाहर ही की।

जो मन में आया हम उसको कहे जा रहे हैं।
उफनाए नद की कश्ती सम बहे जा रहे हैं।।

अपने स्वर्ण कलश को हमने
पटक दिया धरती ऊपर।
बाहर के मल अपशिष्टों का
तिलक लगाया माथे पर।

त्याग मृदुल गंगा जल हम विष पिये जा रहे हैं।
उफनाए नद की कश्ती सम बहे जा रहे हैं।।

जब तक वह थी अपने घर में
हमने कदर नहीं जानी।
मिली विदेशी लेबल में जब
की हमने खींचातानी।

देख महल जर्जर खंडहर सम ढहे जा रहे हैं।
उफनाए नद की कश्ती सम बहे जा रहे हैं।।

गहन रखा हमने विवेक को
बुद्धि टांग दी खूंटी पर।
किन चीज़ों की हमें ज़रूरत
नहीं नियंत्रण है उस पर

बनकर भेड़ भेड़ के पीछे चले जा रहे हैं।
उफनाए नद की कश्ती सम बहे जा रहे हैं।।

शिव जी के यहां चोरी

– राजेश जोशी

एक बार सारे चोर चोरी करने से सुस्ता गये
चोरी के प्रोफेशन से उकता गये
सारी चोरियां रोकीं
और किसी भगवान के पास जाने की सोची
नारद जी सारे चोरों को आते देख घबरा गये
सारे दरवाजे बंद कर एक इश्तिहार लटका गये–
'बुरी नज़र से मेरे मकान की तरफ देखना भी पाप है
कुछ भी गड़बड़ होने पर चींटी बनने का श्राप है'।
सबने कैलाश पर्वत की राह बनायी
और शिवजी को फरियाद सुनायी
सब बोले–
"हम अपने पिछले जन्म के पापों को
इस तरह क्यों चुकायें
और भी तो धंधे हैं, चोर ही क्यों बन जायें
आपको ऐसा क्या रास आया
कि हमें चोर ही बनाया?"
शिवजी बोले–
"ये तो कर्म का धागा है
हम सबको अलग-अलग ही पहनाते हैं
जहां तक चोरी का सवाल है
कुछ कमाते हैं कुछ बचाते हैं
और कुछ गंवाते हैं।"
चोरों को बात समझ आयी
सबने अपने घरों की राह बनायी
थोड़ी देर बाद पार्वती जी आयीं
और शिवजी की, की खिंचायी–
"रास्ते में नारद कह रहा था
चोर घूम रहे हैं, क्या घर की ठीक रखवाली है?"
अन्दर जाते ही चिल्लायी–
"हम लुट गये बर्बाद हो गये सारी तिजोरी खाली है।"

आदित्य की कविता में निराला जैसे तेवर हैं

– शिवकुमार बिलग्रामी

यह एक ऐसा दौर चल रहा है जिसमें पढ़ने वाले कम और लिखने वाले अधिक हैं। इसका कारण है कि ज्यादातर लोग अंतरतम में अपने आप को अकेला पाते हैं और उनके उस सूनेपन से उत्सित भाव उन्हें कविता लेखन के लिए बाध्य करते हैं। पर कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनकी पूरी सोच ही काव्यमय है। उनके द्वारा विरचित काव्य किसी दबाव में फूट पड़े लावे की तरह नहीं अपितु पिघलते बर्फ से निकले झरने की तरह हैं। नवोदित कवि डॉ. आदित्य शुक्ल का काव्य संग्रह 'यदि मिल जाएं पंख उधार' इसी काव्यमयी सोच का परिचायक है।

कवि का एक महत्त्वपूर्ण दायित्व यह होता है कि वह अपने काव्य लेखन हेतु कच्ची सामग्री अर्थात विषयों को आस-पास से ही उठाए और उसे काव्य रूप देकर निकटस्थ लोगों के लिए ही उपयोगी बनाए। कहने का तात्पर्य यह कि उसकी कविताएं आम जन तक पहुंचे। डॉ. शुक्ल इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। उनकी कविता 'बिगड़ रहे हैं लोग' की ये पंक्तियां सराहनीय हैं :

रास्ता न जाने कौन-सा पकड़ रहे हैं लोग
शांति-प्रेम छोड़ के झगड़ रहे हैं लोग

कवि की चेतना में एक गहरा तत्त्व-बोध है। वह अपनी एक दूसरी कविता में बड़ी स्पष्टता के साथ लिखता है–

चिंता न लोक की न परलोक की खबर
यह भूल गए जग में मेहमान हैं ये लोग।

वर्तमान में स्वार्थपरता इतनी हावी है कि वह जीवन के किसी भी क्षेत्र से ओझल नहीं हो पाती। जो सबसे निकट संबंध हैं उनमें भी यह स्वार्थपरता सर चढ़ के बोलती है–

जब तक समझा मैंने उसको, हमराही थे हम दोनों
जब चाहा वो मुझको समझे, उस दिन मन से मीत गया

आदित्य शुक्ल की कविताओं में विविधता और स्पष्टता तो है ही साथ ही इनकी कविताओं में कभी-कभी निराला जैसे विद्रोही स्वर और तेवर भी देखने को मिलते हैं–

करोड़ों के घोटाले, जांच में हो गए लाखों खर्च
आंसू भी हम पोंछ न पाए, बीत गया फिर एक वर्ष

कृति : यदि मिल जाएं पंख उधार
कवि : डॉ. आदित्य शुक्ल
प्रकाशक : दक्षिण भारत
पृष्ठ : 109; **मूल्य** : 150 रुपये मात्र

सृजन के विविध रूप हैं, काव्य सृजन भी उनमें से एक है। कोई भी सृजन अपनी प्रासंगिकता तभी सिद्ध कर पाता है जब सृजनकर्ता की दृष्टि और अभिव्यक्ति के बीच कोई अंतर न रहे। काव्य के उत्कृष्ट अभिव्यक्ति के लिए कवि की भाषा पर गहरी पकड़ आवश्यक है। हम आशा करते हैं कि डॉ. शुक्ल के आगामी काव्य-संग्रह भाषा की दृष्टि से न केवल अधिक प्रांजल और परिमार्जित होंगे अपितु उनमें अपने विविध भावों को व्यक्त करने के लिए वांक्षित शब्द-वैविध्य भी होगा।

आप किन चक्करों में रहते हैं
देवता पत्थरों में रहते हैं।
–प्रदीप चौबे

इक बार उसने मुझको देखा था मुस्कुराकर
इतनी-सी है हक़ीक़त, बाकी कहानियां हैं।
– मेला राम 'वफ़ा'

ख़ैर इन बातों में क्या रखा है, क़िस्सा खत्म कर
मैं तुझे हमदर्द समझा था, ये मेरी भूल थी।
– रशीद 'अफ़रोज़'

आंख से आंख लड़ती है, मगर दिल क़त्ल होता है
कहां शुरू होता है दंगा, कहां पर ख़त्म होता है।
– शिवकुमार 'बिलग्रामी'

जो भी करना हो वो कर गुज़रो, ये दिल की राय है
सोचने वाला हमेशा सोचता रह जाये है।
– वकील 'अख़्तर'

दिलकिशन साबित हुआ, हर आसरा मेरे लिए
कोई दुनिया में नहीं मेरे सिवा मेरे लिए।
– हकीम 'नातिक'

इक उम्र कट गई है तिरे इंतिज़ार में
ऐसे भी हैं कि कट न सकी जिनसे एक रात।
– फ़िराक 'गोरखपुरी'

दोनों जहान देके वो समझे, ये खुश रहा
या आ पड़ी ये शर्म कि तक़रार क्या करें।
– ग़ालिब

मुझको अपनी जवानी की क़सम है कि ये इश्क़
इक जवानी की शरारत के सिवा कुछ भी नहीं।
– जांनिसार 'अख़्तर'

बात भी आप के आगे न जुबां से निकली
लीजिए, आए थे हम सोच के क्या-क्या दिल में।
– वज़ीरअली 'सबा'

हमें भी आ पड़ा है दोस्तों से काम कुछ, यानी
हमारे दोस्तों के बेवफा होने का वक़्त आया।
– हरिचन्द 'अख़्तर'

पारस-पखान का सफ़रनामा

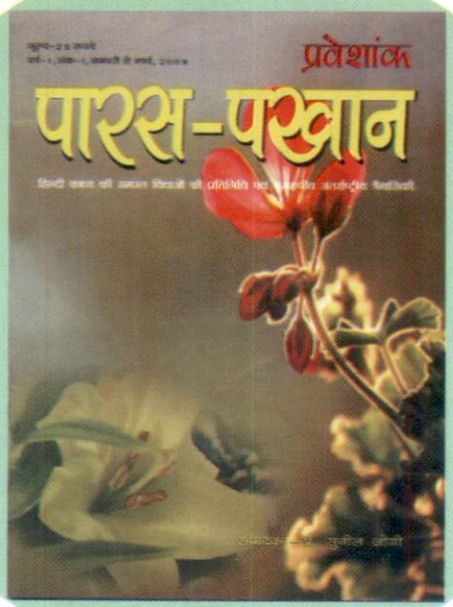

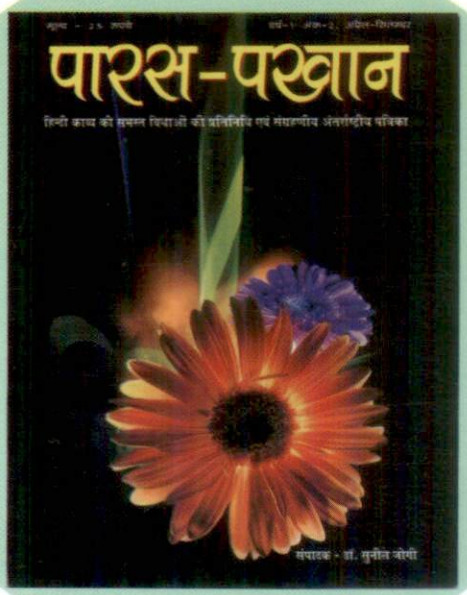

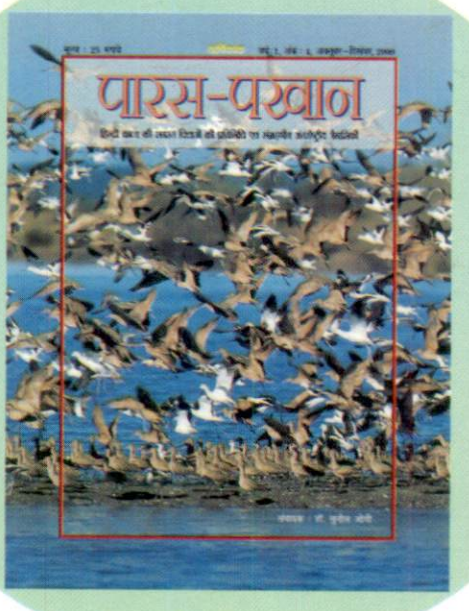

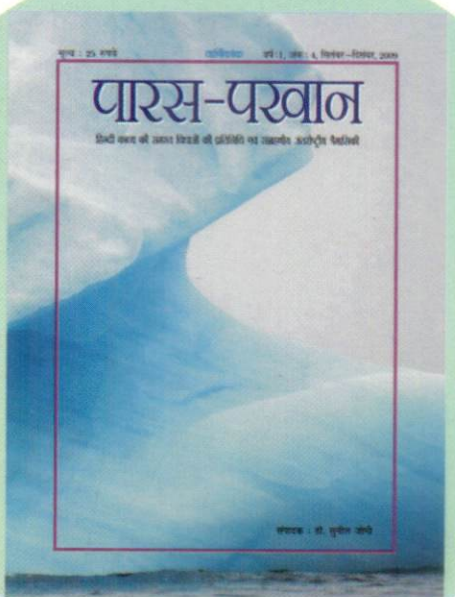

प्रसून प्रतिष्ठान के लिए **डॉ. सुनील जोगी** द्वारा संपादित एवं
डॉ. अनिल कुमार द्वारा **सी-49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड, लखनऊ** से प्रकाशित।

डायमंड बुक्स में प्रकाशित
सुप्रसिद्ध कवि डॉ. सुनील जोगी की रचनाएँ

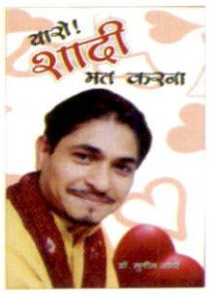

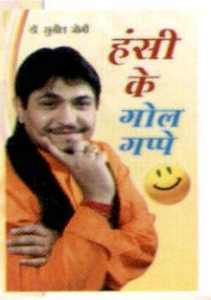

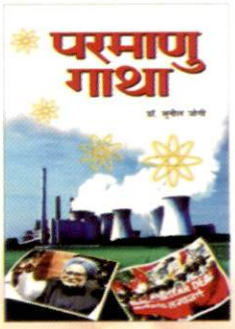

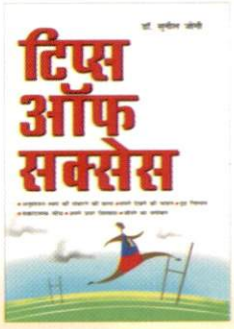

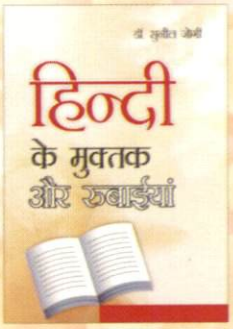

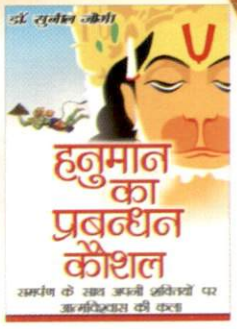

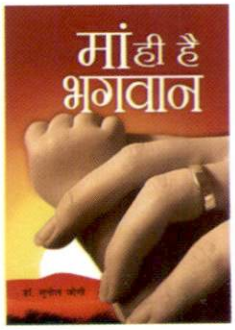

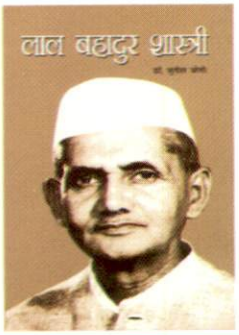

डायमंड बुक्स X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II नई दिल्ली-110020 फोन : 011-41611861, 40712100 फैक्स : 41611866 ई-मेल : sales@dpb.in
सभी बुक स्टॉलों पर उपलब्ध Shop online at www.dpb.in